समयसार, सातवाँ कलश है, सातवाँ कलश है न?

अतः शुद्धनयायत्तं प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत्।
नवतत्त्वगतत्वेपि यदेकत्वं न मुंचति॥ ७॥

टीकाकार आचार्य निम्नलिखित श्लोक में यह कहते हैं कि तत्पश्चात् शुद्धनय के आधीन सर्वद्रव्यों से भिन्न आत्मज्योति प्रगट हो जाती है।

क्या कहते हैं, कि तत्पश्चात् अर्थात् यथार्थ दृष्टि से '**शुद्धनयायत्तं**' शुद्धनय के आधीन... त्रिकाली वस्तु जो ज्ञायकभाव है, वह शुद्धनयस्वरूप है अथवा शुद्धनय के आधीन... जो ज्ञान का अंश त्रिकाल को स्वीकार करता है, उसे यहाँ शुद्धनय कहते हैं। श्रुतज्ञान प्रमाण है, उसमें नय, प्रमाण का भेद है। उसमें से शुद्धनय जो एक भेद है, वह त्रिकाल को स्वीकार करता है। समझ में आया? शुद्धनय आधीन न हो, ज्ञान की पर्याय त्रिकाली द्रव्य का स्वीकार करती है, उसके आधीन प्रगट होता है तो यह सम्यग्दर्शन, ऐसा होने पर भी, सम्यग्दर्शन की पर्याय में शुद्धनय का विषय जो द्रव्य है, वह पर्याय में नहीं आता। थोड़ी सूक्ष्म बात है।

यहाँ कहते हैं कि शुद्धनय के आधीन प्रत्यज्ञ ज्योति प्रगट होती है। **नव तत्त्व में प्राप्त होने पर भी....** क्या कहते हैं? आहाहा! जीव की एक समय की पर्याय में अजीव का ज्ञान होता है, अजीव तो (उसमें) आता नहीं; अजीवरूप तो परिणमन होता नहीं परन्तु अजीवरूप परिणमन होता है — ऐसा कहा तो अजीव का जो ज्ञान होता है, वह पर्याय है, उस पर्याय को यहाँ अजीव कहते हैं। ज्ञान जानता है न अजीव को, परन्तु उसरूप द्रव्य नहीं होता। आहाहा! है?

श्रोता : कौन होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय होती है। सूक्ष्म बात है। पूरा श्लोक ही सूक्ष्म है। नव तत्त्व अर्थात् यहाँ जीव की एक समय की पर्याय और एक समय का अजीव का ज्ञान और एक समय का वहाँ पुण्य-पाप के विकल्प की उत्पत्ति का काल और दो मिलकर आस्रव की पर्याय और संवर-निर्जरा तथा मोक्षरूप पर्याय परिणमति है तो इस संवर-निर्जरा और मोक्षरूप पर्याय में द्रव्य नहीं आता है। आहाहा! सूक्ष्म है, भगवान!

आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, और मोक्ष... आस्रव अर्थात् पुण्य-पाप, अन्दर उस पर्यायरूप पर्याय होती है; पर्यायरूप द्रव्य नहीं होता। एकरूप ज्ञायक रहनेवाली चीज, उस पर्याय में नहीं आती। आहाहा! चाहे तो वह मोक्ष की पर्याय हो परन्तु उस पर्याय में द्रव्य नहीं आता है। आहाहा! चाहे तो संवर, निर्जरा, मोक्ष के मार्ग की पर्याय हो, उस समय में उत्पन्न होने के काल में उत्पन्न हो... आहाहा! तथापि जीवद्रव्य जो वस्तु है, वह नव पर्याय में नहीं आया। आहाहा!

श्रोता : पर्याय से द्रव्य भिन्न कहाँ रहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य भिन्न रहा ध्रुव में... सूक्ष्म बात है प्रभु! यहाँ तो नवतत्त्व में से एक भूतार्थ निकालना, यह शुद्धनय का विषय है। आहाहा! नव तत्त्वरूप परिणमन पर्याय में हुआ, वह है, व्यवहाररूप से है। तीर्थरूपी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र; चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ (गुणस्थान), वह तीर्थ है, वह व्यवहारनय का विषय है। तीर्थ और यह लेंगे टीका में। तीर्थ की प्रवृत्ति के लिए नवतत्त्व कहे हैं। क्योंकि चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ (इत्यादि) यह भेद है। यह भेद है, वह सब व्यवहारनय का विषय है परन्तु उस व्यवहारनय के विषयरूप जो पर्याय है, उससे शुद्धनय के आधीन द्रव्य तो भिन्न है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

है ? **नवतत्त्वगतत्वेपि** यहाँ तो नौ में कितना अशुद्ध है और कितना शुद्ध है। नौ में... यह पुण्य-पाप, आस्रव-बन्ध, अशुद्ध है और संवर-निर्जरा मोक्ष यह शुद्ध है। इन नौ तत्त्व में शुद्धतत्त्व और अशुद्धतत्त्व दो; पर्याय का, हाँ! इन नौ तत्त्वों में **गतत्वेपि**.... पर्याय में इतने — नौ तत्त्व की प्राप्ति होने पर भी अपने एकत्व को नहीं छोड़ती। आहाहा! वस्तु जो

ध्रुवस्वरूप चिदानन्द प्रभु नित्य वस्तु द्रव्यस्वभाव है, वह कभी पर्याय में नहीं आता और अपना द्रव्यपना कभी नहीं छोड़ता। आहाहा! ऐसा मार्ग है। है न? **शुद्धनय के आधीन आत्मज्योति प्रगट होती है।** प्रगट तो है परन्तु अन्तर्दृष्टि करने से — शुद्धनय का लक्ष्य करने से स्वभाव में वह जैसा है, वैसा प्रतीति में आता है। है तो है, है परन्तु है वह कब प्रतीति में आता है? समझ में आया?

एक प्रश्न हुआ था न अभी, थोड़े वर्ष पहले... एक वकील का लड़का है, वीरजीभाई वकील हैं, इस काठियावाड़ में दिगम्बर का अभ्यास पहले उनको है, जामनगर! पहले-पहले दिगम्बर का बहुत पुराना ८०-९०-९२ वर्ष, उनका लड़का है। उसने प्रश्न किया अभी दो-तीन वर्ष पहले, कि प्रभु! आप आत्मा को कारणपरमात्मा कहते हो, आत्मा को कारणपरमात्मा कहते हो और कारणजीव कहो, कारणपरमात्मा कहो, द्रव्य कहो, सामान्य कहो, ध्रुव कहो, सदृश कहो, एकरूप कहो — तो उसको प्रभु तुम कारणपरमात्मा कहते हो तो कारण हो तो कार्य तो आना ही चाहिए — ऐसा प्रश्न (किया था)। कार्य तो हमें आता नहीं। कारणपरमात्मा तुम स्थायी कहते हो और कार्य तो आता नहीं। (हमने कहा) प्रभु! एक बार स्वीकार कर तो समझ, यह कारणपरमात्मा है — ऐसी दृष्टि जब हुई तब है — ऐसा उसको आया है। है परन्तु किसको है? जिसकी पर्याय ने अन्दर में आश्रय लिया तो पर्याय में कारणपरमात्मा है — ऐसी श्रद्धा में आया। तथापि कारणपरमात्मा पर्याय में नहीं आया, परन्तु कारणपरमात्मा — ऐसा है ऐसी प्रतीति में आया, उसे कारणपरमात्मा है। आहाहा!

श्रोता : दूसरा माने या न माने उसके साथ क्या सम्बन्ध, वह तो है ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : माने, न माने ऐसा नहीं, परन्तु कारणपरमात्मा है। है, वह किसको ख्याल में आता है? है, जगत् में, परन्तु है वह ख्याल में किसको आता है? पर्याय बुद्धिवाले को तो कारणपरमात्मा ख्याल में नहीं आता। अतः उसके लिये तो कारणपरमात्मा है ही नहीं। आहाहा! है? जरा सूक्ष्म है, भगवान!

सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग — जिनेश्वर का पन्थ कोई अलौकिक है! ओहोहो! उसका कोई अचिन्त्य स्वरूप है! यहाँ तो कहते हैं कि वस्तु कारणपरमात्मा है। तो है

का ज्ञान हुआ, उसको है। जिसको भान नहीं हुआ, उसको 'है' — यह कहाँ से आया? समझ में आया? यह वस्तु है परन्तु है इसका ख्याल आये बिना 'है' — यह किसको आया? आहाहा! बहुत सूक्ष्म लॉजिक है। आहाहा! वस्तु जो त्रिकाल कारणपरमात्मा आनन्दकन्द प्रभु शुद्ध द्रव्य सामान्यरूप है, वह जब पर्याय में ख्याल में आया, उसको कारणपरमात्मा है तो उसे पर्याय में कार्य-सम्यग्दर्शन का (कार्य) हुए बिना नहीं रहेगा। आहाहा! क्या कहा?

यहाँ शुद्धनय के आधीन कहा न? जिसको त्रिकाली वस्तु है, उसका लक्ष्य हुआ तो उसके लिये त्रिकाली शुद्ध है परन्तु जिसे लक्ष्य ही नहीं हुआ — ख्याल में नहीं आया, उसको है कहाँ? उसे कहाँ है? यह तो सर्वज्ञ कहते हैं। आहाहा! है? ऐसी बात है प्रभु! यह तो समयसार बापू! समयसार अर्थात् आहाहा! भरतक्षेत्र में.... एक बार पण्डितजी ने कहा था, वहाँ गोवाहटी आसाम (में)! समयसार पढ़ते-पढ़ते तुम एक बार बोले थे ओ...हो...हो...! समयसार के अतिरिक्त कोई ऐसी चीज नहीं है। आसाम में आये थे। बापू! यह तो क्या चीज है प्रभु! तेरी प्रभुता का पार नहीं, इस प्रभुता का स्वरूप जो अन्दर त्रिकाल है — है तो त्रिकाल है परन्तु है उसका लक्ष्य करके प्रतीति में आया कि ओ...हो...! यह तो पूर्णानन्द प्रभु है। वह प्रतीति में और ज्ञान की पर्याय में है ऐसा है — ऐसा आया; वह चीज नहीं आयी। आहाहा! धन्नालालजी! यह प्रतीति आयी। है उसकी प्रतीति.... तो प्रतीति में सारा द्रव्य है — ऐसी प्रतीति आयी; सारा द्रव्य पूर्ण है — ऐसी पर्याय में प्रतीति आयी, उसको तो है कारणपरमात्मा; और द्रव्य उसको प्रतीति में आया है। आहाहा! तथापि पर्याय में त्रिकाली द्रव्य — शुद्धनय के आधीन हुआ, तथापि वह पर्याय में जो सम्यग्दर्शन की हुई, उसमें द्रव्य नहीं आया। द्रव्य का सामर्थ्य कितनी है — ऐसी प्रतीति आ गयी। आहाहा! बापू! मार्ग अलग है, भाई! अरे! सम्प्रदाय में — जैन में जन्म हुआ (तो) तुझे जैन तत्त्व का ख्याल आ गया — ऐसा नहीं है। आहाहा!

क्या कहते हैं? कि शुद्धनय के आधीन, जो वस्तु है उस पर दृष्टि गयी तो वह आधीन वहाँ द्रव्य है — ऐसा ख्याल में आया? ऐसा होने पर भी, ऐसी चीज होने पर भी, पर्याय में नौ प्रकार की पर्याय है — परिणमन है। कितना ही शुद्ध और कितना ही अशुद्ध....

आस्रव, बन्ध, और अजीव आदि अशुद्ध और संवर, निर्जरा, मोक्ष यह शुद्ध परन्तु यह शुद्ध और अशुद्ध पर्याय होने पर भी, वह द्रव्यस्वभाव शुद्ध अशुद्ध पर्याय में नहीं आया। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसी बातें हैं।

यहाँ कहते हैं, **शुद्धनय के आधीन आत्मज्योति प्रगट होती है।** प्रगट होती है अर्थात् है — ऐसा भान हुआ। वस्तु तो है वह है। वस्तु प्रगट होती है? परन्तु जिसकी दृष्टि वहाँ गयी, उसे वह शुद्ध है — ऐसा प्रगट हुआ। आहाहा! समझ में आया? यह तो तेरहवीं गाथा का उपोद्घात है। तेरहवीं गाथा का उपोद्घात है, यह श्लोक। आहाहा! भाई! इसको समझने में बराबर प्रयत्न करना चाहिए प्रभु! आहाहा! कुछ भी एक अंश का (भी) फेरफार रह जायेगा तो वस्तु हाथ नहीं आयेगी।

श्रोता : अन्तर मिटाने के लिए तो आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डितजी (ने) लिखा था कि हमें आना है। आहाहा! प्रभु! यह चीज जो है परम आनन्द और अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... जिसका अन्त नहीं, इतने गुण हैं। गजब बात है प्रभु! आहाहा! कितने गुण हैं? कि जिनकी संख्या की अनन्तता, उसमें यह अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त को अनन्त अनन्त कर लेना तो भी यह अन्तिम अनन्त का अंश है, इस धर्म का गुण — ऐसा तो आता नहीं। आहाहा!

ऐसा अनन्त गुणरूप बेहद अपरिमित शक्ति का सागर प्रभु एकरूप वस्तु, वह सम्यग्दृष्टि को शुद्धनय के आधीन प्रगट होती है। आहाहा! अर्थात् सम्यग्दृष्टि को पर्याय से लक्ष्य छूट जाता है, नौ प्रकार के भेद हैं, उनका लक्ष्य छूट जाता है। आहाहा! समझ में आया? और एक त्रिकाल भगवान पूर्णानन्द ध्रुव प्रवाह है... प्रवाह का अर्थ ध्रुव पानी का प्रवाह - ऐसा चलता है। यह ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... — ऊर्ध्व प्रचय, ऐसा का ऐसा। ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ऐसी शुद्धनय के आधीन ज्ञान की पर्याय, वह ऊपर जाती है, तब वह आधीन यह चीज है, उसको ख्याल में आता है। डाह्याभाई! ऐसा यह सब। तुम्हारे जज-फज में ऐसा कुछ नहीं आता, वहाँ बड़े जज हैं, जज, अहमदाबाद के बड़े जज। अब छोड़ दिया।

श्रोता : सरकार ने छुड़ाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अवधि पूरी हो जाये पचपन वर्ष की, इसलिए फिर छोड़ दें, फिर नहीं रखते। आहाहा!

प्रभु! तू सुन तो सही! तेरी जितनी महत्ता की, महात्म्यवाली महाप्रभु वह चीज है, वह चीज तो शुद्धनय के आधीन प्रगट होती है, अर्थात् जो श्रुतज्ञान का निश्चय अंश है... श्रुतज्ञान के तो दो भेद हैं — निश्चय और व्यवहारनय। समझ में आया? श्रुतज्ञान के दो भेद हैं। श्रुत तो प्रमाण है, उसके दो भेद हैं — निश्चय और व्यवहार। उनमें से जो एक निश्चय अंश है, वह स्वभाव तक जाता है। आहाहा! समझ में आया?

आज है न (१५ अगस्त) स्वतन्त्रता मिली... स्वतन्त्रता धूल में भी नहीं है! स्वतन्त्र तो भगवान त्रिलोकीनाथ। आहाहा! जिसकी पर्याय की अस्ति है तो द्रव्य की अस्ति है — ऐसा भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी जो वस्तु है, वह कहते हैं कि **शुद्धनय के आधीन आत्मज्योति....** आत्मज्योति अर्थात् सहजात्म पूर्णानन्द पूर्णस्वरूप, पर्याय से रहित पर्याय में, पर्याय से रहित, पर्याय में आत्मज्योति का भान होता है। समझ में आया? श्लोक अमृतचन्द्राचार्य का है, गजब है। सन्तों-दिगम्बर सन्तों की वाणी! आहाहा! इस शुद्धनय के आधीन वह (आत्मज्योति) प्रगट होती है। प्रगट होती है अर्थात् वह है तो है, वह कहाँ प्रगट होती है? वह तो व्यक्त है। वर्तमान पर्याय की अपेक्षा से उसे अव्यक्त कहो। समयसार ४९ गाथा में (ऐसा कहा है)। छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय है — व्यक्त है, उससे भगवान आत्मा भिन्न अव्यक्त है। ४९ गाथा! अव्यक्त के छह बोल हैं न, उसका पहला बोल — छह द्रव्यस्वरूप लोक एक पर्याय में जानने में आता है — ऐसा पर्याय का ज्ञेय है और वह व्यक्त है अर्थात् पर्याय में प्रगट है। उससे भगवान आत्मा भिन्न अव्यक्त है। इस अपेक्षा से अव्यक्त है, हाँ! पर्याय में आया नहीं न? समझ में आया?

एक-एक बोल की बहुत कीमत है। यह कोई वार्ता — कथा नहीं है। आहाहा! यह तो भागवत कथा है। नियमसार में अन्तिम गाथा में आया है, नियमसार! यह तो भागवत शास्त्र है। लोग कहते हैं वह भागवत नहीं। आहाहा! भगवान परमात्मा का स्वरूप

कहनेवाला शास्त्र... भगवान सर्वज्ञ ने ऐसा कहा, ओहो! प्रभु! तुम नौ तत्त्व में आने पर भी, पर्याय में पर्याय — ऐसी होने पर भी, जो त्रिकाली चीज ध्रुव है, जो सम्यग्दर्शन का विषय है, शुद्धनय के आधीन जो प्रगट ख्याल में आता है, वह चीज नौ तत्त्व में नहीं आती। आहाहा! समझ में आया? जैसे अग्नि — काष्ठ की अग्नि, छाना (कण्डे) की अग्नि छाना कहते हैं न? छाना की अग्नि, पत्तों की अग्नि, पत्ते-तृण की अग्नि — ऐसा कहा जाता है। वह भेद से (कहा जाता है)। वरना तो अग्नि तो उष्णस्वरूप ही त्रिकाली है। त्रिकाल है, समझ में आया? यह दृष्टान्त कलश-टीका में दिया है। यह श्लोक है न, कलश-टीका है न, राजमलजी की; राजमलजी की कलश-टीका है। अलौकिक राजमल टीका! भले जगमोहनलालजी ने किया है, परन्तु प्रभु! क्या कहें? वास्तविक दृष्टि का विषय वहाँ बदल दिया है। व्यवहार से निश्चय प्राप्त होता है — ऐसा वहाँ ले लिया है (परन्तु) ऐसा नहीं है, प्रभु! समझ में आया? आया है न? पण्डितजी को पता है न? पता है। पण्डित ने पढ़ा है और लिखा है, उसमें पहले। आहाहा!

प्रभु! क्या कहें, कहते हैं। इस पर्याय के आधीन द्रव्य प्रगट होता है — ऐसा नहीं है। नव तत्त्व का विकल्प है और भेद है, उसके आधीन आत्मा का भान होता है — ऐसा नहीं है। आहाहा! और जो व्यवहार, दया, दान, व्रत आदि देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, नवतत्त्व की (श्रद्धा) व्यवहाररत्नत्रय.... यह व्यवहाररत्नत्रय तो एक राग है... समझ में आया? इस राग में आत्मा आया ही नहीं और राग से आत्मा जानने में आता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : राग से प्राप्त हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल प्राप्त नहीं हो जाता। आहाहा! पण्डितजी स्पष्टीकरण कराते हैं। तीन काल-तीन लोक में व्यवहार का विकल्प चाहे जितना हो, उससे आत्मा की प्राप्ति हो — निश्चय की (ऐसा) तीन काल-तीन लोक में नहीं है।

श्रोता : ऐसा आप कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा शास्त्र का दृष्टान्त तो देते हैं न, आधार तो देते हैं। आहाहा! सेठ स्पष्ट कराते हैं।

कहा नहीं ? कि संवर-निर्जरा की पर्याय भी जिस समय में जिस समय उत्पन्न होनेवाली है, उस समय होगी। ज्ञेय का स्वरूप ऐसा बताया है। प्रवचनसार, ज्ञेय अधिकार, सम्यग्दर्शन अधिकार.... तो ज्ञेय का स्वरूप ऐसा बताया... भगवान कहते हैं कि जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह उसका जन्मकाल है, वह उत्पत्ति का काल है। किसी निमित्त से होता है या द्रव्य-गुण से होता है — ऐसा भी नहीं है। आहाहा! एक-एक समय की पर्याय, यहाँ जीव की लें... छहों द्रव्यों में है तो छहों द्रव्यों में, वहाँ ज्ञेय अधिकार है, छहों द्रव्य जो ज्ञेय हैं, वे जिस समय में जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह क्रमबद्ध, क्रमसर, उस समय में वह पर्याय अपने से उत्पन्न होती है — षट्कारक से उत्पन्न होती है; आहाहा! चाहे तो मलिन पर्याय उत्पन्न हो या निर्मल पर्याय उत्पन्न हो परन्तु वह पर्याय अपने षट्कारक से (उत्पन्न होती है) कर्ता, कर्म, क्रिया, षट्कारक पर्याय, हाँ! द्रव्य-गुण एक ओर रह गये। षट्कारक से पर्याय परिणमित होती है। आहाहा! ऐसे सम्यग्दर्शन की पर्याय भी अपने षट्कारक से उत्पन्न हुई है परन्तु उसका — श्रद्धा का लक्ष्य द्रव्य पर गया है तो द्रव्य की श्रद्धा की — ऐसा कहने में आता है। आहाहा! बापू! यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर का मार्ग — पंथ है, यह कोई पामर का पंथ नहीं है। कहते हैं कि यह आत्मा वस्तु है, यह पूर्ण जिनस्वरूपी है, यह परमात्मस्वरूप ही आत्मा है, पर्याय की बात नहीं; वस्तु... वस्तु तो परमात्मस्वरूप ही है, वस्तु तो जिनस्वरूप ही है। समझ में आया ?

वह कहा था न, कल नहीं ? 'घट घट अन्तर जिन बसै, घट घट अन्तर जैन' आहाहा! वह जिनस्वरूप ही प्रभु आत्मा है, उसका त्रिकालस्वरूप जिनस्वरूप ही है, आहाहा! वह जिनस्वरूपी वस्तु पर्याय में संवर-निर्जरा और मोक्ष आदि शुद्धपर्याय और आस्रव, पुण्य-पाप और बंध यह अशुद्धपर्याय, यह होने पर भी **नवतत्त्वगतत्वेपि** पर्याय में होने पर भी, पर्याय में आया नहीं। आहाहा! ओहोहो! कहो सेठ! पैसे में यहाँ नहीं सेठाई नहीं करना यहाँ। आहाहा!

यह भिन्न आत्मज्योति यह, यह आत्मज्योति, त्रिकाली वस्तु यह शुद्धनय के आधीन अन्तर ज्ञान की पर्याय उस ओर गयी तो उसके आधीन यह है — ऐसा प्रगट हुआ है।

आहाहा! उस व्यवहार के आधीन से निश्चय प्रगट होता है — ऐसा यहाँ है ही नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? क्या करे! प्रभु का विरह पड़ा, तीन लोक के नाथ रह गये वहाँ, केवलज्ञान की उत्पत्ति का अभाव हुआ, इस समय इस तत्त्व का बोध कराना और करना बहुत अलौकिक बात है, भाई! आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

शुद्धनय के आधीन **आयत्तं** अर्थात् की जो ज्ञान का अंश अन्तर द्रव्यस्वभाव सन्मुख गया, उसको यह आत्मा है — नित्यानन्द प्रभु, सहजात्मस्वरूप, जिनस्वरूप — ऐसा पर्याय में भान हुआ तो उसको प्रगट हुआ। ग्यारहवीं गाथा में तो कहा है, ग्यारहवीं गाथा है न? **व्यवहारोअभूयत्थो** वहाँ टीका में ऐसा लिया है — ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है, वह ज्ञायक अविर्भाव हुआ ऐसा पाठ है टीका में — उसका अर्थ क्या? जो ज्ञायकभाव वस्तु है, वह तिरोभाव हो गयी है, ऐसा कहा। ज्ञायकभाव तो कभी तिरोभाव होता नहीं परन्तु जिसको पता नहीं है तो उसको ज्ञायकभाव है नहीं; अतः तिरोभाव हो गया है (ऐसा कहते हैं)। है तो सही। पाठ ऐसा है टीका में कि ज्ञायकभाव तिरोभाव हो गया है। अरे प्रभु! ज्ञायकभाव तिरोभाव? ज्ञायकभाव तो त्रिकाल एकरूप ही है। तिरोभाव और आविर्भाव उसको लागू पड़ते ही नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? भगवान अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि (ज्ञायकभाव) तिरोभूत हो गया है — उसका अर्थ? राग और पुण्य तथा पर्यायबुद्धि में, है वह उसको ढँक गया है। आहा...हा...! द्रव्यबुद्धिवाले को (ज्ञायकभाव) है — ऐसा भान हुआ तो उसको ज्ञायकभाव आविर्भाव हुआ — ऐसा कहने में आता है। ज्ञायकभाव तो है वह है। समझ में आया? यह तो प्रभु का मार्ग है, बापू! आहा...हा...! यह कोई पण्डिताई का विषय नहीं है यह। हैं? हमारे पण्डितजी इंकार करते हैं, बात सत्य है। ऐसा है भगवान। आहा...हा...!

है वह चीज त्रिकाल अनन्त आनन्द का पुंज और अनन्त... अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु सामान्य ध्रुव, वह आत्मज्योति शुद्धनय के आधीन प्रगट होती है अर्थात् है तो है ही; त्रिकाल प्रगट ही है, व्यक्त ही है... आहाहा! परन्तु जब दृष्टि शुद्धनय की वहाँ गयी, तब उसको यह है — ऐसा भान हुआ। है वह तो है ही। समझ में आया? भाई! यह तो भगवान की कथा है, यह कोई साधारण वार्ता-कथा नहीं। प्रभु! तेरी प्रभुता का पार नहीं है, नाथ!

आहा...हा... ! तेरी शक्ति — एक-एक (शक्ति) में पूर्ण प्रभुता पड़ी है। ऐसी अनन्त शक्ति प्रभुता से भरी पड़ी है। आहाहा ! ऐसी अनन्त शक्तियों का एकरूप सागर भगवान द्रव्य... आहाहा ! वह अन्तर का विषय निश्चयनय है, वहाँ गये तो उसके आधीन यह है — ऐसा ख्याल में आया, तो प्रगट हुआ — ऐसा कहने में आता है। आहाहा !

कि जो **नव तत्त्व में प्राप्त होने पर भी** जैसे वह अग्नि काष्ठ की, कण्डे की है, अग्निरूप से देखो तो अग्नि, अग्निरूप से है। वह काष्ठ के आकार अग्नि हुई, वह तो पर्याय हुई। अग्निपना जो है, वह तो कायम अग्निरूप है। आहाहा ! समझ में आया ? भाई ! यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव द्वारा कथित तत्त्व... अरे ! यह तो कौन है भाई ! आहाहा ! भगवान आत्मा, जिसकी एक समय की पर्याय में छह द्रव्य जानने में आते हैं, इतनी तो पर्याय की ताकत है। क्या कहते हैं ? एक समय की पर्याय माने, तब तो छह द्रव्य माने तब कहने में आते हैं। छह द्रव्य माने नहीं और पर्याय को माने नहीं तो उसने छह द्रव्य को नहीं माना और पर्याय को नहीं माना। आहाहा ! एक समय की पर्याय में... कलश-टीका में बहुत लिया है। जिसमें छह द्रव्य हैं.... छह द्रव्य में तो अनन्त सिद्ध हैं, केवली हैं, तीर्थंकर हैं — ये सब छह द्रव्य में आ गये। आहाहा ! जिसमें एक पर्याय में छह द्रव्य को जानने की ताकत है तो इतनी पर्याय को माने तो छह द्रव्य को माना और छह द्रव्य माने — अनन्त सिद्ध या पंच परमेष्ठी आदि तो पर्याय माने, तथापि उस पर्याय में द्रव्य नहीं आया। आहाहा ! स्वद्रव्य नहीं आया। आहाहा ! समझ में आया ?

वह पर्याय जब स्वसन्मुख झुकती है, तब शुद्धनय का विषय जो द्रव्य है, उसके आधीन हो गयी, यह दृष्टि हो गयी। ओहो...हो... ! यह तो अनन्त चैतन्यरत्नाकर अनन्त आनन्द का — शान्ति का सागर भगवान आत्मा है — ऐसा ज्ञान की पर्याय में उस सन्मुख झुकने से ख्याल में आया, तो वह प्रगट हुआ — ऐसा कहने में आता है। आहाहा ! अरे...रे... ! ऐसा काम भाई ! बेचारी महिलाओं को तो पूरे दिन पकाना और यह करना और उसमें यह बातें ! क्या कहते हैं यह ? बच्चों को सम्हालना, छोटे को बड़ा करना, यह छोटे बेचारे... आहाहा ! भाई ! उसमें भी आत्मा काम कर सकता है। आहाहा ! वह योगसार में नहीं कहा ? गृहस्थाश्रम में काम करने पर भी हेयाहेय का ज्ञान.... योगसार में आता है ! योगीन्द्रदेव !

गृहस्थाश्रम में रहने पर भी हेयाहेय का ज्ञान — रागादि हेय है और स्वरूप उपादेय है, उसका भान है। आहाहा! आहा...! समझ में आया? 'गृहकार्य करते हुए...' ऐसे दो श्लोक हैं। योगसार, योगीन्द्रदेव! हेयाहेय का ज्ञान.... आहाहा! भाई! उसको भी पूर्णानन्द का नाथ अस्तित्वयुत चीज, अस्तित्ववाली चीज, है — ऐसा स्वरूप जिसका त्रिकाल। आहाहा! उसके द्रव्य की दृष्टि हुई तो दृष्टि में और ज्ञान की पर्याय में उसका भान आता है कि यह है। भले चाहे तो उस पर्याय में द्रव्य नहीं आया परन्तु पर्याय में द्रव्य का जितना सामर्थ्य है, उसके ज्ञान में उसका बोध आ गया। समझ में आया? आहाहा! ऐसे श्रद्धा की पर्याय में पूर्णानन्द का नाथ नहीं आया, परन्तु वह पूर्णानन्दस्वरूप है, उसकी प्रतीति में इतनी सामर्थ्य आ गयी। आहाहा! तथापि वह पर्याय, द्रव्यरूप नहीं हुई और वह द्रव्य है, वह पर्यायरूप नहीं हुआ। आहाहा! देखो तो सही तत्त्व प्रभु का! यह थोड़ा-बहुत पढ़े तो ऐसा हो जाता है कि मानो हम समझ गये। बापू! मार्ग अलग है, भाई! आहाहा!

अपने एकत्व को नहीं छोड़ती। है? जो एकरूप चीज है, वह नवतत्त्व की पर्याय / परिणति भले हो परन्तु एकपना चिदानन्द का नहीं छोड़ती दृष्टि। आहाहा! मोक्ष की, केवलज्ञान की पर्याय हो... प्रभु! आहाहा! अक्षर के अनन्तवें भाग निगोद में ज्ञान की पर्याय हो तो भी उसका ज्ञायकभाव तो वहाँ परिपूर्ण ही है और केवलज्ञान की पर्याय जो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण की पर्याय प्रगट हुई, अनन्त केवली-सिद्ध केवलज्ञान में जानने में आये, वह पर्याय प्रगट हुई (तो भी) उस समय में तो ज्ञायकभाव तो पूर्ण है इतना ही है। आहाहा! यह तो अगम्यगम्य की बातें हैं प्रभु! इतनी ताकतवाली पर्याय बाहर आयी तो उसमें कोई शक्ति अन्दर में कम हुई है या नहीं? नहीं; पूर्णानन्द में कुछ घट-बढ़ नहीं है। वह एकत्व को नहीं छोड़ता है — इतना अर्थ हुआ। समझ में आया? भाषा तो सादी है; भाव तो प्रभु है वह है। आहाहा!

भावार्थ - नवतत्त्व में प्राप्त हुआ आत्मा... पर्यायपने परिणमन में दिखता है, अनेकरूप दिखाई देता है। **यदि उसका भिन्नस्वरूप विचार किया जाये।** आहाहा! **तो वह अपनी चैतन्य चमत्कार मात्र ज्योति को नहीं छोड़ता है।** आहाहा! चैतन्य-ज्योति ज्ञायकभाव का पूर्ण रूप, वह उसने कभी नहीं छोड़ा। आहाहा! समझ में आया? बन्धभाव

की पर्याय में आया तो भी ज्ञायकभाव कभी नहीं छूटा। आहाहा! और केवलज्ञान की पर्याय, मुक्तपर्याय है तो भी ज्ञायकभाव में कभी कमी नहीं हुई, (वह) कम नहीं हुआ, वह तो इतना का इतना रहा है। वह वस्तु, बापू! वह स्वभाव ऐसा है। क्षेत्र का स्वभाव देखो न! कहीं-कहीं अन्त नहीं है। क्या है यह? आहाहा! दसों ही दिशाओं में कहीं अन्त नहीं है। क्या है यह? तो वह जो क्षेत्र का कहीं अन्त नहीं — ऐसा तर्क से ख्याल में न आवे — ऐसी चीज है। तो भगवान आत्मा ऐसी चीज है कि किसी राग की पर्याय से या पर्यायबुद्धि से ख्याल में आवे — ऐसी चीज नहीं है, भाई! आहाहा! समझ में आया? ऐसा है। ऐसा ही सत्य है; त्रिकाल सत्य ऐसा है।

यहाँ यह कहा न, **अपनी चैतन्य-चमत्कारमात्र ज्योति को नहीं छोड़ता।** यह तो जितना स्वभाव सामर्थ्य है, चाहे तो केवलज्ञान में आओ या चाहे तो अक्षर के अनन्तवें भाग में निगोद में पर्याय आओ, वस्तु तो है वही पूर्ण है। आहा! यह क्या है बापू? यह कोई स्वभाव की तरह क्षेत्र का कहीं अन्त नहीं, ऐसा क्षेत्र का कोई स्वभाव... भाव का अन्त नहीं अनन्त गुण की संख्या का — गुण अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... वहाँ पूरा हो गया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा जो पूर्ण स्वरूप है, वह कभी एकत्वपने को नहीं छोड़ता। आहाहा! नरक और निगोद पर्याय में रहा होने पर भी उसको एकत्वपना नहीं छूटा है। आहाहा! क्या है यह? ख्याल में तो ऐसे आये कि केवलज्ञान हो तो पर्याय इतनी सामर्थ्यवाली आयी तो कोई गुण में कमी हुई या नहीं? भाई! जैसे उस क्षेत्र का स्वभाव कहाँ पूर्ण हुआ? काल का प्रवाह कहाँ से शुरु हुआ? द्रव्य की पर्याय कहाँ से शुरु हुई? आहाहा! यह कोई अगम्य स्वभाव ही वस्तु है, बापू! आहाहा! समझ में आया? ऐसे भगवान आत्मा, केवलज्ञान की पर्याय हो या मिथ्यात्व की पर्याय हो या सम्यग्दर्शन की पर्याय हो; वस्तु तो ज्ञायकभाव जो है, वह पूर्ण-पूर्ण अन्दर पड़ा है। समझ में आया? यह तो उपोद्घात पूरा हुआ। अब गाथा।

गाथा १३

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं॥ १३॥

भूतार्थेनाभिगता जीवाजीवौ च पुण्यपापं च।
आस्त्रवसंवरनिर्जरा बन्धो मोक्षश्च सम्यक्त्वम्॥

अमूनि हि जीवादीनि नवतत्त्वानि भूतार्थेनाभिगतानि सम्यग्दर्शनं सम्पद्यन्त एव, अमीषु तीर्थप्रवृत्तिनिमित्तमभूतार्थनयेन व्यपदिश्यमानेषु जीवाजीवपुण्यपापास्रव-संवरनिर्जराबन्धमोक्षलक्षणेषु नवतत्त्वेष्वेकत्वद्योतिना भूतार्थनयेनैकत्वमुपानीय शुद्धनयत्वेन व्यवस्थापितस्यात्मनोऽनुभूतेरात्मख्यातिलक्षणायाः सम्पद्यमानत्वात्। तत्र विकार्यविकारकोभयं पुण्यं तथा पापम्, आस्राव्यास्रावकोभयमास्रवः, संवार्य-संवारकोभयं संवरः, निर्जर्यनिर्जरकोभयं निर्जरा, बन्ध्यबन्धकोभयं: बन्धः, मोच्य-मोचकोभयं मोक्षः, स्वयमेकस्य पुण्यपापास्रवसंवरनिर्जराबन्धमोक्षानुपपत्तेः। तदुभयं च जीवाजीवाविति। बहिर्दृष्ट्या नवतत्त्वान्यमूनि जीवपुद्गलयोरनादिबन्धपर्याय-मुपेत्यैकत्वेनानुभूयमानतायां भूतार्थानि, अथ चैकजीवद्रव्यस्वभावमुपेत्यानुभूय-मानतायामभूतार्थानि। ततोऽमीषु नवतत्त्वेषु भूतार्थनयेनैको जीव एव प्रद्योतते। तथान्तर्दृष्ट्या ज्ञायको भावो जीवः, जीवस्य विकारहेतुरजीवः। केवलजीवविकाराश्च पुण्यपापास्रवसंवरनिर्जराबन्धमोक्षलक्षणाः, केवलाजीवविकारहेतुवः पुण्यपापास्रव-संवरनिर्जराबन्धमोक्षा इति। नवतत्त्वान्यमून्यपि जीवद्रव्यस्वभावमपोह्य स्वपरप्रत्ययैक-द्रव्यपर्यायत्वेनानुभूयमानतायां भूतार्थानि, अथ च सकलकालमेवास्खलन्तमेकं जीवद्रव्यस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थानि। ततोऽमीष्वपि नवतत्त्वेषु भूतार्थ-

नयेनैको जीव एव प्रद्योतते। एवमसावेकत्वेन द्योतमानः शुद्धनयत्वेनानुभूयत एव। या त्वनुभूतिः सात्मख्यातिरेवात्मख्यातिस्तु सम्यग्दर्शनमेव। इति समस्त निरवद्यम्।

इस प्रकार ही शुद्धनय से जानना सो सम्यक्त्व है, यह सूत्रकार इस गाथा में कहते हैं :—

भूतार्थ से जाने अजीव जीव, पुण्य पाप रु निर्जरा।
आस्त्रव संवर बंध मुक्ति, ये हि समकित जानना॥

गाथार्थ : [भूतार्थेन अभिगताः] भूतार्थ नय से ज्ञात [जीवाजीवौ] जीव, अजीव [च] और [पुण्यपापं] पुण्य, पाप [च] तथा [आस्त्रवसंवर निर्जराः] आस्त्रव, संवर, निर्जरा [बंधः] बन्ध [च] और [मोक्षः] मोक्ष [सम्यक्त्वम्] — यह नव तत्त्व सम्यक्त्व है।

टीका : यह जीवादि नव तत्त्व भूतार्थनय से जाने हुए सम्यग्दर्शन ही हैं (— यह नियम कहा); क्योंकि तीर्थ की (व्यवहार धर्म की) प्रवृत्ति के लिये अभूतार्थ (व्यवहार) नय से कहा जाता है ऐसे नवतत्त्व — जिनके लक्षण जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्त्रव, संवर, निर्जरा बन्ध और मोक्ष हैं — उनमें एकत्व प्रगट करनेवाले भूतार्थनय से एकत्व प्राप्त करके, शुद्धनयरूप से स्थापित आत्मा की अनुभूति — जिसका लक्षण आत्मख्याति है — वह प्राप्त होती है (शुद्धनय से नवतत्त्वों को जानने से आत्मा की अनुभूति होती है, इस हेतु से यह नियम कहा है।) वहाँ विकारी होने योग्य और विकार करनेवाला — दोनों पुण्य हैं तथा दोनों पाप हैं, आस्त्रव होने योग्य और आस्त्रव करनेवाला — दोनों आस्त्रव हैं, संवररूप होने योग्य (संवार्य) और संवर करनेवाला (संवारक) — दोनों संवर हैं, निर्जरा होने के योग्य और निर्जरा करनेवाला — दोनों निर्जरा हैं, बँधने के योग्य और बन्धन करनेवाला — दोनों बन्ध हैं, और मोक्ष होने योग्य तथा मोक्ष करनेवाला — दोनों मोक्ष हैं; क्योंकि एक के ही अपने आप पुण्य, पाप, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष की उपपत्ति (सिद्धि) नहीं बनती। वे दोनों जीव और अजीव हैं (अर्थात् उन दो में से एक जीव है और दूसरा अजीव।)

बाह्य (स्थूल) दृष्टि से देखा जाये तो — जीव-पुद्गल की अनादि बन्धपर्याय के समीप जाकर एकरूप से अनुभव करने पर यह नवतत्त्व भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं और

एक जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं; असत्यार्थ हैं; (वे जीव के एकाकार स्वरूप में नहीं हैं;) इसलिए इन नव तत्त्वों में भूतार्थ नय से एक जीव ही प्रकाशमान है। इसी प्रकार अन्तर्दृष्टि से देखा जाये तो ज्ञायक भाव जीव है और जीव के विकार का हेतु अजीव है; और पुण्य, पाप, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष जिनके लक्षण हैं — ऐसे केवल जीव के विकार हैं और पुण्य, पाप, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष — ये विकार हेतु केवल अजीव हैं। ऐसे यह नव तत्त्व, जीवद्रव्य के स्वभाव को छोड़कर, स्वयं और पर जिनके कारण हैं ऐसे एक द्रव्य की पर्यायों के रूप में अनुभव करने पर भूतार्थ हैं और सर्व काल में अस्खलित एक जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं — असत्यार्थ हैं। इसलिए इन तत्त्वों में भूतार्थनय से एक जीव ही प्रकाशमान है। इस प्रकार यह एकत्वरूप से प्रकाशित होता हुआ शुद्धनयरूप से अनुभव किया जाता है। और जो यह अनुभूति है सो आत्मख्याति (आत्मा की पहिचान) ही है, और जो आत्मख्याति है सो सम्यग्दर्शन ही है। इस प्रकार यह सर्व कथन निर्दोष है — बाधा रहित है।

भावार्थ : इन नव तत्त्वों में, शुद्धनय से देखा जाये तो जीव ही एक चैतन्य-चमत्कार मात्र प्रकाशरूप प्रगट हो रहा है, इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न नवतत्त्व कुछ भी दिखाई नहीं देते। जब तक इस प्रकार जीव तत्त्व की जानकारी जीव को नहीं है, तब तक वह व्यवहारदृष्टि है, भिन्न-भिन्न नवतत्त्वों को मानता है। जीव पुद्गल की बन्ध-पर्यायरूप दृष्टि से यह पदार्थ भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं; किन्तु जब शुद्धनय से जीव-पुद्गल का निज स्वरूप भिन्न-भिन्न देखा जाये तब वे पुण्य, पापादि सात तत्त्व कुछ भी वस्तु नहीं हैं; वे निमित्त-नैमित्तिक भाव से हुए थे इसलिए जब वह निमित्त-नैमित्तिकभाव मिट गया तब जीव, पुद्गल भिन्न-भिन्न होने से अन्य कोई वस्तु (पदार्थ) सिद्ध नहीं हो सकती। वस्तु तो द्रव्य है, और द्रव्य का निजभाव द्रव्य के साथ ही रहता है तथा निमित्त-नैमित्तिक भाव का अभाव ही होता है, इसलिए शुद्धनय से जीव को जानने से ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है। जब तक भिन्न-भिन्न नव पदार्थों को जाने, और शुद्धनय से आत्मा को न जाने तब तक पर्यायबुद्धि है।

गाथा १३ पर प्रवचन

अब, गाथा १३।

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं॥ १३॥

भूतार्थ से जाने अजीव जीव, पुण्य पाप रु निर्जरा।
आस्त्रव संवर बंध मुक्ति, ये हि समकित जानना॥

इसका गाथार्थ लेते हैं। यह तो उन्नीसवीं बार चलता है। समयसार उन्नीसवीं बार सभा में चलता है। पण्डितजी! समयसार अठारह बार पहले से ठेठ पूरा सभा में चल गया है। यह उन्नीसवीं बार... एक और नौ। आहाहा!

श्रोता : एक वह द्रव्य तथा नौ वह तत्त्व।

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं? वह पर्याय है। द्रव्य तो है वह है। आहा...हा...! सामान्य (लोगों) को तो ऐसा लगे कि इस क्षेत्र का अन्त कहीं नहीं? कहीं होगा नहीं? क्या? पीछे क्या है, क्या है, सुन तो सही। ऐसे भगवान की ज्ञान पर्याय उत्पन्न हुई तो भी स्वभाव में बिल्कुल अपूर्णता — कमी हुई (नहीं)। पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण स्वरूप से भरा पड़ा है। प्रभु! इस स्वभाव की बातें बहुत सूक्ष्म हैं। आहा...हा...! बेचारे साधारण प्राणी कहते हैं न? यह ईश्वर ने किया, क्योंकि यह बात उन्हें जँची नहीं है, है वह है — द्रव्य है, पर्याय है, वह भी अनादि है। आहाहा! और सिद्ध भी अनादि है — ऐसा नहीं कि संसार पहले और पीछे सिद्ध हुए। यह क्या है? आहाहा! संसार भी अनादि है और सिद्ध भी अनादि है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे भगवान आत्मा चाहे जितनी बन्धपर्याय में — नास्तिक की पर्याय मिथ्यात्व की हुई तो ज्ञायकभाव तो जैसा है वैसा ही है। आहाहा! वह भूतार्थनय से ज्ञात, है?

गाथार्थ : **जीव, अजीव** जीव का अर्थ यहाँ वह त्रिकाली नहीं लेना, उसकी एक समय की पर्याय (लेना)। नौ तत्त्व में से भिन्न बताना है न? तो जीव से भी जीव भिन्न है, तो जीव की एक समय की पर्याय से भिन्न हुआ। आहाहा! ज्ञानचन्दजी! आहाहा! नौ लेना

है न ? तो नौ में जीव द्रव्य पूरा आ जावे, तब तो नौ पर्याय होती नहीं, एक समय की पर्याय जो जीव की है, उसको यहाँ नौ में जीव कहा है। **अजीव....** अजीव तो पर्याय में आता ही नहीं न, अजीवरूप पर्याय होती नहीं परन्तु अजीव का ख्याल आया कि यह 'अजीव है', उस ज्ञान की पर्याय को यहाँ अजीव कहा है। अजीव के ज्ञान की पर्याय को 'अजीव' कहा है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसा मार्ग ! और **पुण्य-पाप....** शुभ-अशुभभाव पर्याय में होता है न ? और **आस्रव** वह पुण्य-पाप दोनों मिलकर आस्रव है। तत्त्वार्थसूत्र में सात लिये हैं, यहाँ नौ लिये हैं। तत्त्वार्थसूत्र में आस्रव कहकर पुण्य-पाप को उसमें डालकर आस्रव कहा। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। यहाँ स्थूल बात स्पष्ट कर दी है। आस्रव में दो भाग हैं, पुण्य और पाप दोनों ही आस्रव हैं। आहाहा ! दया, दान, व्रत, भक्ति, तप आदि के विकल्प उत्पन्न होते हैं, वे पुण्यतत्त्व हैं। उस पुण्यतत्त्व के काल में भी भगवान तो ज्ञायकतत्त्व अत्यन्त भिन्न है। पापतत्त्व की पर्याय के काल में भी भगवान तो ज्ञायकतत्त्व अत्यन्त भिन्न है। आस्रवतत्त्व की पर्याय के काल में भी भगवान तो जितना है, उतना ही है। आहाहा ! है ? आस्रव। **संवर...** संवर सच्चा लेना, हाँ ! पहले नौ तत्त्व का जो अनादि का परिणमन है, वह मिथ्यात्व का है। अनादि नौ तत्त्व, वह आया है कलश में कि नौ तत्त्वरूप परिणमन मिथ्यात्वभाव है। उस मिथ्यात्वभाव में यह संवर, निर्जरा, मोक्ष शुद्ध है, वह नहीं लेना। समझ में आया ? यहाँ तो वह भी लेना। क्या कहा ? समझ में आया ? पहले आ गया न ? नव तत्त्व का अपने कलश में लिया है। कलश में लिया है न ? छठवें कलश में, देखो !

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य-पाप का अनादि बन्ध सम्बन्ध को छोड़कर संसार अवस्था में जीवद्रव्य नवतत्त्वरूप परिणमा है। वह तो विभाव परिणति है, नवतत्त्वरूप वस्तु का अनुभव मिथ्यात्व है। इन नौ में संवर-निर्जरा शुद्ध, वह नहीं लेना वहाँ। द्रव्य-संवर, द्रव्य-निर्जरा और द्रव्य-मोक्ष अर्थात् बन्ध का अभाव, उसको मोक्ष गिन करके नौ तत्त्व लिया है। आहाहा ! क्योंकि नौ तत्त्व का अनुभव तो मिथ्यात्व कहा, तो संवर-निर्जरा हो तो मिथ्यात्व कहाँ से आया ? समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ जो नौ तत्त्व है, उसमें तो संवर शुद्ध है, निर्जरा शुद्ध है, मोक्षतत्त्व भी शुद्ध पर्याय है। आस्रव-बन्ध वह अशुद्ध तत्त्व-पर्याय है परन्तु उन नौ में वस्तु जो त्रिकाल चीज है, वह नौ से भिन्न है। आहाहा! ऐसा है। अरे! सन्तों ने ऐसी सरल भाषा — लोगों को समझ में आये ऐसी शैली से (प्रसिद्ध की है)।

श्रोता : गम्भीर तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गम्भीर तो कोई भी चीज ख्याल में लो तो तुम्हें ऐसा लगे कि इस क्षेत्र का अन्त क्या? क्या? मैंने एक बार (संवत्) ९१ की साल में नास्तिक को कहा, (वह) व्याख्यान में आता था। महेरवानजी दीवान था, जामनगर का पारसी था, ९१-९१। कितने वर्ष हुए? ४३ वर्ष। व्याख्यान में (समयसार की) १००वीं गाथा चलती थी। समयसार की १००वीं (गाथा चलती थी)। सभा बड़ी। यहाँ तो प्रसिद्धि बड़ी है न पहले से। आहाहा! तो महेरवानजी दीवान था, बहुत ऐसा था कि जिसके दरबार है, उसका एक हजार का वेतन था, उस समय तो बारह सौ कर दिया, दो सौ बड़ा दिया तो उसे पता पड़ा। किसने यह बारह सौ चढ़ाया? डाह्याभाई! वह दीवान कहता है, यह महीने का एक हजार मेरा वेतन है, बारह सौ किसने लिखा? साहब! दरबार ने लिखा। दरबार ने क्यों लिखा? क्या दरबार का कोई काम आवे तो मेरी सिफारिश में उसका ढीला कर दूँ, ऐसा है? केस-केस, राज्य का केस हो दो सौ मुझे वेतन विशेष मिला तो उसका केस में जिता दूँ, इसलिए दो सौ बढ़ाया है? छोड़ दी नौकरी, नहीं करनी है — ऐसा पारसी था। तुम राजा ने दो सौ (रुपये) वेतन बढ़ा दिया तो तुम्हारे राज्य का काम आवे तो मैं कानूनन नहीं करूँ, फेरफार कर दूँ, इसके लिये हमें दो सौ रुपये विशेष वेतन देते हो — ऐसा हम नहीं लेते। तो फिर उसका लड़का था, तो हम विहार करके आये... लड़का भी आया और एक बड़ा डॉक्टर था, वह भी आया। ढाई हजार का वेतन था। कहा, भाई सुनो! तुम कोई न मानते हो भले, परन्तु मैं इतना कहता हूँ यह क्षेत्र है न क्षेत्र, तो इस क्षेत्र की पूर्णता कहाँ आयी? क्या है? कभी विचार किया है कहा? नास्तिक भी यह विचारेगा या नहीं? अनन्त को, पाँच को पाँच द्वारा पाँच बार गुणा करो तो उसे वर्ग कहा जाता है। वैसे ही अनन्त में अनन्त बार ऐसे अनन्त को अनन्त एक बार गुणा करने से जो आया उसे फिर

अनन्त बार उसके पीछे तीसरी बार अनन्त बार — ऐसे अनन्त को अनन्त बार गुणा करो तो अनन्त वर्ग होता है तो उससे भी क्षेत्र का पार नहीं होता है। क्या है यह ? ऐसे ख्याल में लिये बिना मानना ऐसा नहीं।

जिसका अन्त नहीं — ऐसी कोई चीज है तो उसके जाननेवाले का क्या कहना, प्रभु! उसकी अस्ति की उसे खबर नहीं है। अन्तरहित चीज है, उसको पता है ? आहाहा! ज्ञान की पर्याय में यहाँ उसका पता है। वह अन्तरहित चीज है, यह ज्ञान जानता है। उस ज्ञान की पर्याय और उसका गुण, बापू! वह क्या चीज है ?! आहाहा! भले एक गुण हो परन्तु उस गुण की अचिन्त्य अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... सामर्थ्य है। आहाहा! ऐसे-ऐसे अनन्त गुण में प्रत्येक गुण का रूप और अनन्त सामर्थ्य है — ऐसा ज्ञायकभाव त्रिकाल एकरूप रहता है। समझ में आया ? आहाहा! यह संवर, निर्जरा, बंध है न ? मोक्ष, वह सब नौ तत्त्व समकित है अर्थात् नौ तत्त्व व्यवहार से कहे थे उनमें अकेला आत्मा निकालना, उसका नाम समकित है।

(विशेष कहेंगे।) (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)